

जनगणना में जाति को शामिल करना क्यों समाज और विकास के हक में है?

उर्मिलेश

वर्ग और वर्ण आधारित भीषण गैरबराबरी, जटिल और असहज वर्गीय रिश्तों में पिचकते भारतीय समाज में जब कभी वर्गीय और वर्णीय (जातिगत) रिश्तों में सुधार की बात या कोशिश होती है, समाज और राजनीति में सक्रिय कुछ खास श्रेणियों और विचारों के लोग असहज होकर ऐसे प्रयासों का विरोध करने लगते हैं। हर क्षेत्र में जातियों की चर्चा की जाती है। चुनावी राजनीति में जोरें से होती और हर दल करते हैं। मीडिया के समाचार विश्लेषण में तमाम जातियों के आंकड़े पेश किए जाते हैं। उनमें स्टैटिक प्रतिशत-संख्या बताने का दावा भी कर दिया जाता है। एकेडमिक जगत हो या कार्यपालिका का क्षेत्र, हर जगह जाति पर बात होती है। न्यायालयों और आयोगों के फैसलों और सिफारिशों में भी इनकी चर्चा होती है। अभी हाल ही में एक बहुचर्चित और सूप्रीम न्यायिक फैसले में समाज में जातियों के ठोस आंकड़े की उपलब्धता अनुपलब्धता का जिक्र आया था। एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट में जातिवार राष्ट्रीय जनगणना करने का भी सुझाव शामिल था।

पर अपने देश के किसी हिस्से में जनगणना का जब भी मसला आता है, कुछ दल, कुछ सरकारें, कुछ कुलीन बुद्धिजीवी-संपादक और खास श्रेणियों के लोग जनगणना में कुछ जातियों की गिनती न करने पर जोर देने लगते हैं। उनके पास तर्क तो नहीं पर कुतर्क बहुत होते हैं। मसलन, कभी वे कहते हैं कि सभी जातियों की गणना करने से जातिवार बढ़ जायेगा और कभी कहते हैं कि ऐसी गणना की जरूरत ही क्या है? ऐसे में कोई हमें बताए कि अपने देश में सन् 1941 से ही जातिवार जनगणना नहीं हो रही है, क्या जातिवार हमारे यहां खत्म हो गया या कम हो गया? इस सवाल के जवाब में जातिवार जनगणना के विरोधियों या आलोचकों के कुतर्क की असलियत सामने आ जाती है। फिर भी वे कुतर्क से बाज नहीं आते। मैं समझता हूं कि राष्ट्रीय जनगणना या किसी प्रदेश की जनगणना में जो लोग जातियों की गणना के विचार, प्रस्ताव या पहल का विरोध करते हैं, वे न सिर्फ वर्ण-व्यवस्था के साथ खड़े हैं, अपितु समुदायों में बहुस्तरीय गैरबराबरी बनाये रखने के हिमायती भी हैं। ऐसा मैं क्यों कह रहा हूं इसे जाने के लिए इन ठोस तथ्यों से रूबरू होना जरूरी है।

भारत में जनगणना का इतिहास बताता है कि सन् 1872 में जब इसकी शुरुआत हुई तो लोगों की धार्मिक और जातिगत पृष्ठभूमि, दोनों की गणना की गई। सन् 1931 तक यह सिलसिला चला। लेकिन 1941 में कुछ प्रशासनिक और विश्वयुद्ध से जुड़ी समस्याओं के नाम पर जनगणना के दौरान जाति की गणना नहीं कराई गयी। आजाद भारत में लोगों की धार्मिक पृष्ठभूमि की गणना तो होती रही पर जातियों की गणना बंद कर दी गयी। फिर सर्वेधानिक जरूरतों के मद्देनजर कुछ जातियों की गणना का सिलसिला शुरू हुआ। तब से सिर्फ एससी-एसटी समुदायों की गणना कराई जाती है।

कोई हमें ये समझा दे कि देश में जब धार्मिक आधार पर गणना करने में कोई समस्या नहीं है और कुछ जाति-समूहों की गिनती करने में किसी तरह की दिक्कत नहीं है तो समाज की शेष जातियों (हिन्दू अपर कॉस्ट और पिछड़ी जातियों की गणना से परहेज क्यों? क्या समस्या है? क्या इनकी गणना एक संवैधानिक जरूरत नहीं है? ईडब्ल्यूएस अरक्षण की सुप्रीम कोर्ट में चली लंबी सुनवाई के दौरान क्या इसकी जरूरत रेखांकित नहीं हुई थी? क्या मंडल आयोग की रिपोर्ट के लिए काम करते समय आयोग के माननीय सदस्यों ने जातिवार गणना के आंकड़ों की अनुपलब्धता का सवाल नहीं उठाया था? यही नहीं, मंडल आयोग ने अपनी रिपोर्ट में भी जातिवार जनगणना करने का सुझाव दिया। पर आयोग की 40 में सिर्फ एक ही सिफारिश पर सन् 1990-91 में कुछ निहित स्वार्थी तत्वों ने उत्तर भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में इस कदर बावेला मचवाया कि तत्कालीन सरकार आयोग की अन्य मांगों पर विचार करने का साहस नहीं कर सकी। देश की दोनों प्रमुख पार्टियों-कांग्रेस और भाजपा की तरफ से मंडल आयोग की आरक्षण सम्बन्धी सिफारिश का उस समय विरोध हो रहा था।

अगर भारत में राष्ट्रीय जनगणना का इतिहास देखें तो जातिवार जनगणना न कराना परम्परा से विच्छेद था। बाद में कुछ जातियों को गणना में शामिल करना और कुछ को छोड़ देना अटपटा फैसला था। आज की परिस्थिति और प्रशासनिक जरूरतों को देखें तो राष्ट्रीय जनगणना या किसी प्रदेश की अपनी खास जनगणना में हिन्दू उच्चवर्णीय जाति समूह और ओबीसी के तहत आने वाली जातियों की गणना न करने का कोई औचित्य ही नहीं है। इसलिए मैं समझता हूं बिहार सरकार का जातिवार जनगणना कराने का मौजूदा फैसला पूरी तरह वाजिब, संवैधानिक और तर्कसंगत है। जहां तक मेरी जानकारी है, इस तरह की जनगणना का फैसला सर्वदलीय सहमति के साथ नीतीश कुमार की अगुवाई वाली सरकार ने अपनी कैबिनेट की बैठक में लिया था।

उस समय सरकार में जद-यू के साथ भाजपा प्रमुख घटक के रूप में शामिल थी। बिहार एनडीए की उस सरकार में मुख्यमंत्री नीतीश(जद-यू) के साथ भाजपा के दो नेताओं को उप मुख्यमंत्री बनाया गया था। यानी गठबंधन और अन्य दलों का यह सर्वसम्मत फैसला था। मजे की बात है कि जातिवार जनगणना कराने की मांग को लेकर बिहार का एक सर्वदलीय प्रतिनिधिमंडल उससे पहले दिल्ली जाकर प्रधानमंत्री मोदी से भी मिला था। लेकिन प्रधानमंत्री ने राष्ट्रीय जनगणना में सभी जातियों की गणना कराने में असमर्थता जताई। उसके बाद ही बिहार ने राज्यस्तरीय जातिवार जनगणना का कदम उठाया। केंद्र ने बिहार सहित कई राज्यों को स्पष्ट किया कि कोई राज्य अपने स्तर पर ऐसी गणना कराता है तो केंद्र को कोई गुरेज नहीं होगा।

बिहार में अभी कराई जा रही जनगणना की इस पृष्ठभूमि को समझना जरूरी है। वैसे भारतीय समाज, राजनीति और नौकरशाही में वर्चस्व और



जनगणना' की मांग बहुत पहले से की जाती रही है। बिहार और कुछ अन्य प्रदेशों के नेताओं के भारी दबाव के चलते ही तत्कालीन यूप्रीए सरकार ने 2011 की जनगणना में जातियों की गणना का कॉलम रखने का वादा किया था। कांग्रेस की अगुवाई वाली सरकार ने सिर्फ कांगज पर या किसी सभा के मंच पर ही नहीं, बाकायदा भारतीय संसद में इसका एलान किया। उस समय के वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी की तरफ से सदन में इस आशय का बयान आया। स्वयं तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी ओबीसी सांसदों के सर्वदलीय प्रतिनिधिमंडल को इसका आश्वासन दिया था। पर यूप्रीए सरकार ने अपना वादा नहीं निभाया। दिखावे के लिए और ओबीसी समुदाय के सांसदों की नाराजगी कुछ कम करने के लिए अलग से एक 'सामाजिक आर्थिक व जातिवार गणना का सर्वेक्षण (SECC-2011)' कराने का फैसला किया गया।

सरकार के अंदर बैठी 'कुलीनों' की मजबूत लॉबी ने लगभग 4890 करोड़ की सरकारी खर्च कराकर यह फूड़ 'खेला' किया, जो न सिर्फ फालतू अपितु बेमानी भी था। जो काम 'भारत के रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त' के कार्यालय के तत्वावधान में कराई जाने वाली आधिकारिक राष्ट्रीय जनगणना में बहुत तरीके और सहजता से कराया जा सकता था, उसे न कराकर अलग सर्वेक्षण कराया गया। उसके आधे-अधे आंकड़े आज तक सार्वजनिक भी नहीं किये गये। मेरी याददाश्त में भाजपा की मौजूदा मोदी सरकार ने 2014 से अब तक 9-10 बार वादा कर चुकी है कि SECC-11 के जातियों की संख्या वाले आंकड़े जल्दी ही सार्वजनिक किये जायेंगे। पर जिस तरह वे 'अच्छे दिन' अब तक नहीं आये, वैसे ही स्थिरण के वे कथित आंकड़े भी कहीं नहीं नजर आए।

यह कम विस्मयकारी नहीं कि इस मामले में यूप्रीए(कांग्रेस) और एनडीए(भाजपा) की सरकारों का रवैया समान रहा है। वैसे भारतीय समाज, राजनीति और नौकरशाही में वर्चस्व और

किये अपने विचार को पलटने का फैसला किया। तब तत्कालीन गृह मंत्री(राष्ट्रीय जनगणना का कार्यालय उन्हों के मंत्रालय के अधीन था) राजनाथ सिंह ने आधिकारिक स्तर पर 2021 की राष्ट्रीय जनगणना में जातिवार गणना का कॉलम शामिल करने का ऐलान किया था। पर बाद में भाजपा और मोदी सरकार का फैसला पलट गया।

बिहार में जातिवार जनगणना के सवाल पर आज भाजपा जिस उत्तरापोह में नजर आ रही है शायद वह उसकी सियासी और सामाजिक मजबूरी है। एक तरफ आरएसएस से मिली 'सैद्धांतिकी' है और दूसरी तरफ बिहार में समाज की संरचना और चुनावी राजनीति में उसकी जरूरत। संभवतः उसका एक खेमा जातिवार जनगणना का विरोध कर रहा है और दूसरा खेमा इस पर अपनी सशर्त सहमति जताने की बात कर रहा है। कुछ मीडिया खबरों में मैंने देखा कि पार्टी के वरिष्ठ नेता सुशील मोदी कुछ असंगतियों को दूर करके जनगणना करने की बात कह रहे हैं।

बहरहाल, बिहार में जनगणना के पहले चरण का काम 7 जनवरी को शुरू हो गया। यह कैसे बेहतर ढंग से संपन्न हो; इस पर बिहार सरकार निश्चय ही विचार कर रही होगी। सरकार को सभी पक्ष के सकारात्मक सुझावों पर भी गैर करना चाहिए ताकि जातिवार जनगणना का सिलसिला सुसंगत ढंग से आगे बढ़े और बिहार के इस जनगणना मॉडल को राष्ट्रीय स्वीकार्यता भी मिले। निश्चय ही अगर यह जनगणना अच्छे ढंग से संपन्न हो गयी तो इसके सही नतीजों से प्रशासनिक-कामकाज और योजनाओं के क्रियान्वयन में राज्य और केंद्र की शासकीय एजेंसियों को आसानी होगी। देश और प्रदेश के बुद्धिजीवियों, मीडिया और शोध संस्थानों को भी हिन्दू अपर कॉस्ट और ओबीसी को लेकर मनगढ़त या अंदाजिया आंकड़े परोसने की जरूरत नहीं होगी। इसलिए इसे जरूरी और प्रामाणिक आंकड़े हासिल करने के शास